इकाई 1 तिथि साधन

इकाई की संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 तिथि परिचय

1.2.1 तिथियो का एतिहासिक स्वरुप

1.2.2 तिथियों के स्वामी तथा संज्ञाएं

1.3 तिथि साधन

1.4 तिथि वृद्धि एवं तिथिक्षय

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1.9 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत् इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगें कि–

- तिथिज्ञान की परम्परा क्या है।
- तिथि किसे कहते हैं तथा तिथियों की अन्य संज्ञाएं क्या है।
- तिथि साधन के गणितीय अवयव क्या हैं।
- तिथियों का साधन कैसे होता है।
- तिथियों का मान कितना होता है।
- तिथियों के भुक्त भोग्य मान का साधन कैसे होता है।
- तिथिक्षय एवं तिथिवृद्धि कैसे होती है।
- तिथियों के स्वामी कौन हैं।

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातकोत्तर ज्योतिष कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रचलित **पंचांग एवं मुहर्त्त** नामक तृतीय पाठ्यक्रम के खण्ड–2 (पंचांग साधन एवं प्रकार) की पहली इकाई है जिसका शीर्षक तिथि साधन है। इससे पूर्व पंचांग परिचय नामक प्रथम खण्ड की इकाईयों में आपने पंचांग के स्वरुप, निर्माण परम्परा, सैद्धान्तिक स्वरुप सहित भेद एवं उपयोगिता के बारे में अध्ययन कर लिया है। अतः अब आप प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत पंचांग के प्रथम एवं महत्वपूर्ण अवयव तिथि के साधन विधि का विस्तार पूर्वक अध्ययन करने जा रहे हैं।

तिथि पंचांग के प्रथम अंग के रूप में सर्वत्र प्रतिष्ठित है जिसकी भारतीय व्रत पर्व के निर्धारण में प्रमुख भूमिका होती है। यहां तिथि एक संज्ञा मात्र है जिसकी अनेक व्युत्पत्ति शास्त्रों में प्राप्त होती है। इनकी उत्पत्ति एवं निर्धारण में सूर्य एवं चन्द्रमा के स्व स्व भ्रमणपथ में गतिशीलता ही कारण है। अर्थात् अपनी कक्षा में भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा जब अधिक गति के कारण अपनी कक्षा में भ्रमण करते हुए सूर्य से 12 अंश ;720कला) आगे निकल जाता है तो एक तिथि का बोध होता है। अतः आइये इस इकाई में तिथि के स्वरुप एवं साधन की गणितीय प्रविधि को भी समझने का प्रयास करते हैं।

1.2 तिथि परिचय

जैसा कि आपने पहले कालज्ञान प्रसङ्ग में पढ़ा है कि सूर्य एवं चन्द्रमा अपने–अपने चक्र में भ्रमण करते हुए जब राशि, अंश, कला, विकलादि से समान होते हैं तो दर्शान्त या अमावस्यान्त काल होता है। इस एक अमावस्यान्त काल से अग्रिम अमावस्यान्त काल को कालगणना परम्परा में चान्द्रमास के नाम से जाना गया है।परिभाषा के अनुसार किसी भी मास का तीसवाँ भाग उस मास का 1 दिन होता है अतः उपर्युक्त दो दर्शान्तों के मध्य पड़ने वाले इस चान्द्रमास संज्ञक काल खण्ड का तीसवाँ भाग चान्द्र दिन होता है जिसे हम तिथि के नाम से भी जानते हैं। अतः एक चान्द्रमास में 30 तिथियां होती है जो एक चान्द्रमास के शुक्ल और कृष्ण नामक दो पक्षों में विभक्त होकर 15–15 संख्यक होती हैं अर्थात् शुक्ल पक्ष में पन्द्रह तिथियाँ तथा कृष्ण पक्ष की पन्द्रह तिथियाँ। इन दोनों पक्षों की तिथियों को हम क्रमशः प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी आदि से चतुर्दशी तक समान रूप में गिनते है तथा शुक्लपक्ष की अन्तिम तिथि पूर्णिमा एवं कृष्णपक्ष की अन्तिम तिथि अमावस्या के रूप में जानी जाती है। चूकि चान्द्रमास की पूर्ति अमावस्या में होती है इसलिए पंचाङ्गों में तथा अंक गणना में पूर्णिमा के लिए 15 तथा अमावस्या के लिए 30 संख्या का व्यवहार किया जाता है। वैसे तो सामान्य रूप से तिथियों को हम आकाश में नहीं देख सकते परन्तु इनके स्वरूप का दर्शन किसी भी खगोल वैज्ञानिक या ज्योतिष शास्त्रज्ञ के लिए अत्यन्त आसान है। क्यों कि सैध्दान्तिक दृष्टि से सूर्य एवं चन्द्रमा का अपने–अपने कक्षाओं में भ्रमण एवं उनके भ्रमण से उत्पन्न होने वाली गतियां ही तिथियों के ज्ञान का मुख्य आधार है। यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिक सूर्य को स्थिर मानते हुए उसकी गति को अस्वीकार कर तिथि की उत्पत्ति पर भी प्रश्न खड़ा करते हैं परन्तु भारतीय ज्योतिष की गणना परम्परा में गणित की सरलता हेतु भूमि के चल तथा सूर्य के स्थिर होते हुए भी भूमि को स्थिर एवं सूर्य को चल मानकर भूकेन्द्रिक गणना करते हुए भूमि के स्थान पर सूर्य में गति स्वीकार करते हुए गणितीय नियमों का निरूपण किया गया है। अतः हमे यह संशय नहीं करना चाहिए कि भारतीय ज्योतिष के सिध्दान्त वास्तविकता से परे हैं।

जैसा कि आपने पहले पढ़ा है कि सूर्य एवं चन्द्रमा अपनी नियत गति से निश्चित भ्रमण पथ (कक्षा) में घूमते हुए बारह राशियों (भगण) का भोग करतें हैं तथा राश्यादिमान से इन दोनों की समानता अमावस्यान्त काल में होती है जहां पर एक चान्द्रमास की पूर्ति एवं दूसरे चान्द्रमास का आरम्भ होता है। सौरमण्डल की इस स्वाभाविक प्रक्रिया में चन्द्रमा शीघ्र गति के होने के कारण अमान्त के बाद सूर्य से आगे निकल जाता है तथा जब तक सूर्य एक राशि का भोग करता है तब तक चन्द्रमा पूर्व अमान्त विन्दु पर पहुंच कर सूर्य द्वारा भुक्त राशि का भी भोग करते हुए सूर्य से पुनः राश्यादि मान में समान होकर चान्द्रमास की पूर्ति कर देता है। अतः इस चान्द्रमास की पूर्ति प्रक्रिया में सूर्य एवं चन्द्रमा के गतियों (मानों) में 12 राशि का तथा तिथियों में 12 अंश का अन्तर हो जाता है, इस तरह सूर्य और चन्द्रमा का 12 अंश

का अन्तर होने पर एक तिथि होती है। वही बराह अंश एक, दो, तीन आदि के गुणक में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया आदि तिथियाँ होती हैं। अतः अमावस्या के अन्त में $12 \times 30 = 360$ अंश का अन्तर हो जाता है।

1.2.1 तिथियों का एतिहासिक स्वरुप

भारतीय ज्योतिष शास्त्र की गणना परम्परा में तिथियों का महत्वपूर्ण स्थान है तथा इसके ज्ञान प्रविधि को भारतीय ज्योतिषशास्त्र के ऋषि परम्परा की अपूर्व उपलब्धि मानी गयी है। यद्यपि शंकर बालकृष्ण दीक्षित सहित अनेक इतिहासकारों ने वैदिक काल में चान्द्रमास के तीसवें भाग अथवा सूर्य और चन्द्रमा के 12 अंश के अन्तर से उत्पन्न होने वाले कालखण्ड के अर्थ में प्रयुक्त तिथि शब्द के स्पष्ट प्रयोग को नकारा है परन्तु वैदिक संहिताओं एवं वेदों से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों के सूक्ष्मानुशीलन से तिथियों की सत्ता का स्पष्ट संकेत एवं परवर्ती ग्रन्थों में स्पष्ट वर्णन दिखाई पड़ता है। तिथियों के परिज्ञान में आकाश के सतत परीक्षण सहित प्रायोगिक अध्ययन की ही विशिष्टता दिखाई देती है क्यों कि हमारे पूर्वज महर्षियों ने ज्योतिष शास्त्र के प्रायोगिक अध्ययन को अच्छी तरह समझा एवं आत्मसात किया इसीलिए **"प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रम्"** आदि उक्तियाँ प्रचलित हुई। आवश्यकतओं नें आविष्कार को जन्म दिया तथा सतत् आकाश के अन्विक्षण ने ही तिथि नक्षत्रादि की संज्ञाओं को निर्धारित कराया। सृष्टि के आरम्भिक कालों में जब मनुष्य सभी स्थितियों एवं पदार्थों से अनभिज्ञ था तब उसका खुले आकाश के नीचे बैठे हुए आकाश की बदलती हुई अवस्था को कौतुहल के साथ देखना ही परीक्षण पूर्वक निष्कर्ष के रूप में परिणत हुआ। जैसे किसी समय विशेष में समस्त वातावरण का प्रकाशित होना और कालान्तर में पुनः अंधकारपूर्ण हो जाना तथा इनकी बार–बार पुनरावृत्ति होना आदि दिन–रात्रि के पहचान का कारण बना होगा। इनमें भी रात्रियों की दो प्रकार की स्थितियों का बनना प्रकाश पूर्ण रात्रियाँ और अन्ध कारपूर्ण रात्रियाँ। इन स्थितियों ने ही मानव के वैज्ञानिक मन को विचार के लिए प्रेरित किया। किसी रात्रि विशेष की सांध्य वेला में पूर्वी क्षितिज पर प्रकाशित पूर्ण चन्द्रमा का दिखलायी देना तथा धीरे धीरे प्रतिदिन क्षीण होकर 15 दिन में पूर्ण रूप से क्षीण होना और पुनः उसी प्रक्रिया में धीरे–धीरे वृध्दि को प्राप्त करते हुए 15 दिनों में पूर्णता को प्राप्त करने की प्रक्रिया के कारण शायद उस तिथि या रात्रि को पूर्णा या पूर्णिमा संज्ञा से संबोधित किया गया। इस प्रक्रिया को देखने से यह भ्रम भी उपस्थित हुआ कि कहीं चन्द्रमा 15 तो नहीं है जो अलग–अलग समयों में दृश्य होता है परन्तु इसका निवारण करते हुए स्पष्ट वर्णन भी प्राप्त हुआ कि एक ही चन्द्रमा पंचदशी की रात्रि में पूर्णता को प्राप्त करता है और दूसरी पंचदशी की रात्रि में क्षीण हो जाता है। चन्द्रमा वै पंचदशः। एष हि पंचदश्यामपचीयते। पंचदश्यामापूर्यते। (तै0 ब्रा0 1.5.10) इस प्रकार पूर्णिमा तिथि एक मानदण्ड बन सकी तथा एक पूर्णिमा से ठीक तीसवीं रात्रि में पुनः चन्द्रमा पूर्ण आकार में आकाश में दिखलायी देता है ऐसा निश्चित हुआ।

यां पर्यस्तिमियादभ्युनदियादिति सा तिथिः।

अनुमानतः बहवृच ब्राह्मण के इस उक्ति से तिथि की यह पहली परिभाषा अथवा पहला लक्षण निर्धारित हुआ कि चन्द्रमा जिसमें उगता और अस्त होता है उसे तिथि कहते हैं। इसे प्राचीनतम काल की श्रेष्ठतम परिभाषा भी कहा जा सकता है। उस काल में तिथि की अन्य परिभाषाओं में भी यह निश्चित हो चुका था कि सूर्य और चन्द्रमा के 12 अंश के अन्तर से एक तिथि की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार वैदिक ऋषियों के सूक्ष्म निरीक्षण की प्रवृत्ति के कारण चन्द्रमा की स्थिति से पूर्णिमा और अमावस्या तिथि का निर्धारण किया जा सका। क्यों कि जिस दिन चन्द्रमा पूर्ण बिम्ब के रूप में आकाश में दिखलाई देता है तथा जिस दिन पूर्ण रूप से नहीं दिखाई देता उस दिन की एक

निश्चित अवधि में पुनरावृत्ति होती है और गणित द्वारा भी उसका मान प्राप्त होता है। चन्द्रमा 27.5 दिनों में 27 नक्षत्रों का भ्रमण करता हुआ 29.53 सावन दिनों में एक चान्द्रमास की पूर्ति करता है। परिणामतः एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा आने तक चन्द्रमा पूर्ण नक्षत्र चक्र के 27 नक्षत्रों के अतिरिक्त दो नक्षत्रों का अधिक भोग कर जाता है। इतना ही नहीं अपितु इसी अनुपात मे मध्यवर्ती तिथियों में भी चन्द्रमा का नक्षत्रों से तारतम्य बना रहता है। अतः तिथि की खोज खगोल विज्ञान के अध्ययन क्रम की एक महान उपलब्धि थी। जो चन्द्रमा के दृश्यत्व से सम्बन्धित होकर पूर्णिमा और अमावस्या के द्वारा नियन्त्रित थी। चतुर्दशी, पूर्णिमा और कृष्ण प्रतिपदा तथा चतुर्दशी, अमावस्या और शुक्ल प्रतिपदा तिथियों में प्रत्यक्ष की दृष्टि से अतिसूक्ष्म अन्तर होने के कारण इनका निर्धारण गणित द्वारा ही संभव हो सका। जो आरम्भ में तो स्थूल रूप से निर्धारित हुआ परन्तु कालान्तर में चन्द्रमा के प्रतिदिवसीय उदय के सम्बन्ध में सूक्ष्म गणित का प्रयोग होने लगा परन्तु सूक्ष्म गणित प्रक्रिया को उदयास्त एवं चन्द्र श्रृंगोन्ति के विचार क्रम में ही प्रयोग में लिया गया। सतत् आकाशीय परीक्षण के आधार पर यह भी निर्धारित हो सका कि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि में चन्द्रमा का दर्शन नहीं होगा। परन्तु प्रतिपदा यदि दिन के चतुर्थ प्रहर में या उससे पूर्व समाप्त हो रही हो तो उसी प्रतिपदा की रात्रि में भी चन्द्रदर्शन सम्भव हो जाता है। परन्तु इस प्रकार सनातन प्रक्रिया में चान्द्र दिनों (तिथियों) का महत्व इतना अधिक बढ़ गया कि वार, नक्षत्र एवं योग आदि का महत्व तिथि के अनुपात में गौण हो गया। वर्तमान परिवेश में भी धर्मशास्त्र और ज्योतिष के सम्बन्ध से व्रत–पर्व आदि के निर्धारण में तिथियों का महत्व सर्वोपरि है।

तिथि आनयन की गणितीय प्रक्रिया ग्रहलाघवादि ग्रन्थों में स्पष्टता के साथ दी गयी है। गणित द्वारा तिथि के भोग्य और भुक्त मान का साधन भी सरल है। पंचांग निर्माण की प्रक्रिया में पूर्णिमा को सूर्य और चन्द्र का स्पष्ट अन्तर 180 अंश (6 राशि) अन्तरित होता है तथा चित्रा आदि मासों के नाम निर्धारक प्रधान नक्षत्र का पूर्णिमा से स्पर्श होता है। इसका ज्ञान भारतीय ऋषिगण को अति प्राचीन काल से था इसीलिए अनेक प्रसङ्गों में इसका स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है। अमावस्या तिथि में सूर्य और चन्द्रमा का राशि, अंश, कला, विकलादि का साम्य जिसमें चन्द्रमा के समग्र तेज को सूर्य अपने अन्दर समेट कर अदृश्य हो जाता है तथा दोनों का एकाकार भी सामान्य दृष्टि से हो जाता है। जिससे "दर्शः सूर्येन्दुसंगमः" की परिभाषा चरितार्थ होती है। वसिष्ठ संहिताकार ने इसको स्पष्ट रूप से लिखा है–

सूर्यान्निर्गत्य यत्प्राचीं शशी याति दिने दिने।
लिप्तादिसाम्ये सूर्येन्दुं तिथ्यन्तेऽर्कांशकैस्तिथिः।।

अर्थात् गत्यन्तर वश सूर्य से पूर्व दिशा की ओर चन्द्रमा जैसे–जैसे बढ़ता है वैसे–वैसे तिथियों की उत्पत्ति होती है तथा अमावस्या तिथि में सूर्य चन्द्रमा का राशि, अंश, कला और विकलादि साम्य हो जाता है तथा पुनः दोनों के बीच अमावस्या से आगे यह अन्तर हमेशा 12–12 अंश के अन्तर से बढ़ता हुआ चान्द्रमास पर्यन्त तिथि चक्र को पूर्ण करता है।

तिथि की व्युत्पत्तिजन्य दूसरी परिभाषा के अनुसार **"तन्यन्ते कलया यस्मात् तस्मात् तास्तिथयः स्मृताः"** अर्थात् चन्द्रकला के द्वारा जिसमें विकास हो उसे तिथि कहते हैं।

कतिपय पाश्चात्य विद्वानों एवं उनके अन्धानुगामी कुछ भारतीय इतिहासकारों ने कहा कि वेदों में प्रतिपदादि तिथियों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु सूक्ष्मानुशीलन से पूर्णिमा एवं अमावस्या के लिए वेदों में पंचदशी शब्द का उल्लेख उसी को परिभाषित करता है। इस विषय में ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि वेद केवल ज्योतिष के

ग्रन्थ नहीं हैं जिसमें प्रत्येक विषय विस्तार से वर्णित हो परन्तु सभी भारतीय विद्याओं का मूल तो वहां प्राप्त होता ही है। प्रस्तुत प्रसंग में तिथि शब्द का सीधा सम्बन्ध चन्द्रमा से है क्यों कि तिथियाँ चन्द्रमा के कारण ही बढ़ती और घटती हैं। अतः स्वोत्पत्तिकाल में तिथियाँ रात्रि वाचक रहीं होंगी परन्तु जैसे–जैसे इनका सूक्ष्म और गणितागतरूप सामने आने लगा वैसे ही ये चान्द्र दिन की वाचक हो गयीं। इस प्रक्रिया में समय कुछ अवश्य लगा होगा। इतना ही नहीं अपितु अष्टमी के लिए अष्टका शब्द का प्रयोग भी स्पष्ट दिखाई देता है। जैसे–जैसे तिथियों पर चिन्तन बढ़ा वैसे–वैसे सूक्ष्म अंश विचारों में उपनिबद्ध हुए। पूर्णिमा और अमावस्या तिथियों के भी दो भेद होते हैं जिन्हें राका और अनुमिति के नाम से जाना जाता है। इसमें जिस पूर्णिमा तिथि को रात्रिपर्यन्त पूर्णिमा का घटयादिमान हातो है उसे 'राका' तथा जिस पूर्णिमा तिथि में प्रतिपदा का मान अधिकाधिक प्रविष्ट हो चुका हो उसे अनुमति कहा गया है। इसी प्रकार अमावस्या के भी सिनीवाली और कुहू नामक दो भेद शास्त्रों में पठित है इनमें जिस अमावस्या की रात्रि में शुक्लप्रतिपदा का घटयादिमान अधिक होता है उसे सिनीवाली तथा जिस अमावस्या का मान रात्रि पर्यन्त होता है उसे कुहू कहते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में ऋषियों को यह अच्छी तरह से ज्ञात था कि शुक्ल प्रतिपदा में चन्द्रमा के नहीं दिखने पर भी रात्रि पर चन्द्र कला का पूर्ण प्रभाव रहता है। सूक्ष्म वर्णन भी ऋषियों के तिथि ज्ञान समृध्दता को प्रकट करता है। प्रो. मेघनाथ साहा और एन0सी0 लाहिड़ी द्वारा प्रस्तुत पंचांग सुधार का प्रतिवेदन में लाहिड़ी ने मिस्र वासियों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि खगोल ज्ञान में मिस्रवासी अधिक सभ्य थे क्यों कि उन लोंगों ने काल निर्धारण से चन्द्रमा को पूर्णतया पृथक् रखा है परन्तु बेबीलोनिया सहित अन्य भारतीय चिन्तकों नें चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों को आधार बनाकर काल निर्धारण किया है अतः ये मिस्र के समान उन्नत ज्ञान वाले नहीं है। भारतीयों को नीचा दिखाने के लिए तथा मिस्र, बेबीलोनियन आदि की ज्ञान संस्कृति को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए पाश्चात्य एवं उनके समर्थक इतिहासकार ईसा पूर्व एक हजार वर्ष का आधार ग्रहण करते हैं जबकि साक्ष्य सिध्द है कि महाभारत ईसा पूर्व 3100 वर्ष पूर्व ही घटित हो चुका था तथा भारतीय ज्योतिर्विदों ने महाभारत से पूर्व ही सौर, चान्द्र, सावन आदि मानों के सामंजस्य से उत्पन्न काल व्यवस्था का प्रतिपादन करते हुए अधिकमास की भी संकल्पना कर ली थी जिससे की कालगणना की निरन्तरता बनी रहे और कोई विकार उत्पन्न न हो।

वस्तुतः इतिहास के सूक्ष्मावलोकन से यह स्पष्ट सिध्द होता है कि भारतीय सहित बेबीलोन, मिस्र, यहूदी, ग्रीक आदि सभी देश चान्द्र पंचांग प्रयोग में लाते थे जिससे सौर एवं चान्द्र के बीच सामञ्जस्य स्थापित करने हेतु ज्योतिर्विद्या के अध्ययन में आकाश के सतत वेध की व्यवहारिक आवश्यकता उत्पन्न हुई। भारतीय ज्योतिष के अध्ययन क्रम में तो इसे और सूक्ष्मता पूर्वक देखा गया है क्यों कि धर्मप्राण इस राष्ट्र के व्रत, प्रर्व, उत्सवों के विचार क्रम में पंचांग के अवयवों पर विचार करते समय तिथि को सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। अतः तिथि में ही दोष उत्पन्न हो जाने पर अन्य अनुकूलता विशेष प्रभावी नहीं रहती है। जैसा कि मुहूर्त निर्धारण में तिथि की चर्चा सर्वप्रथम की जाती है–

सर्वत्र कार्येषु शुभाशुभेषु पृच्छन्ति लोके तिथिमेव पूर्वम्।
न क्वापि योगं करणं ग्रहं वा तस्मात् तिथेर्मुख्यतरत्वमुक्तम्।।

वस्तुतः यह एक विचार है जो मुहूर्त ग्रन्थों में तिथि के महत्व को प्रतिपादित करता है। वस्तुतः मुहूर्त निर्धारण की प्रक्रिया में कभी तिथि, कभी चन्द्र, कभी नक्षत्र तो कभी वारों को श्रेष्ठा माना गया है। परन्तु तिथियाँ चन्द्र सूर्य की स्थिति से प्रत्यक्षतया नग्न आँखों से भी दृश्य होती हैं तथा नक्षत्रों का भी सीधा सम्बद्ध चन्द्र से है अतः आरम्भिक

स्थिति में भी नक्षत्रोत्पत्ति के समकाल या पूर्व में ही तिथि ज्ञान की उपलब्धता प्रतीत होती है।

1.2.2 तिथियों के स्वामी एवं संज्ञाएं

तिथियों के स्वामी

पंचाङ्ग परिचय के क्रम में आपने तिथियों की संख्या तथा उनके नाम आदि की विस्तृत जानकारियां प्राप्त की है अब आप उपर्युक्त तिथियों के स्वामी के बारे में जानेंगे। जैसा कि आपने पढ़ा है कि शुक्ल एवं कृष्ण दोनो पक्षों में प्रतिपदा आदि 15–15 तिथियाँ होती हैं। इन 15 तिथियों के पृथक्–पृथक् स्वामी भी कहे गये हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को चान्द्रमास का आरम्भ होता है तथा पूर्णिमा तक चान्द्रमास की 15 तिथियाँ ;15 दिन) पूर्ण हो जाती हैं इसीलिए पूर्णिमा के लिए 15 संख्या का प्रयोग होता है पुनः कृष्णपक्ष का आरम्भ होकर क्रमशः प्रतिपदा आदि 15 तिथियाँ होती हैं तथा अमावस्या के साथ ही चान्द्रमास की पूर्ति होती है इसीलिए अमावस्या के लिए 30 का प्रयोग करते हैं। शास्त्रानुसार इन तिथियों के स्वामी निम्नलिखित हैं।

तिथीशा वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः।
शिवो दुर्गाऽन्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी।। (मु.चि.म.,शु.प्र.श्लो.3)

अर्थात् प्रतिपदा से पूर्णिमा तक क्रमशः अग्नि, ब्रह्मा, गौरी, गणेश, सर्प, कार्तिकेय, सूर्य, शिव, दुर्गा, यम, विश्वदेव, विष्णु, कामदेव, शिव, चन्द्रमा एवं पितर कहे तिथियों के स्वामी कहे गये हैं। इस श्लोक का भावार्थ निम्नलिखित सारणी द्वारा सरलतया ज्ञात हो जाता है।

तिथि	तिथि स्वामी
प्रतिपदा	अग्नि
द्वितीया	ब्रह्मा
तृतीया	गौरी
चतुर्थी	गणेश
पंचमी	सर्प
षष्ठी	कार्तिकेय
सप्तमी	रवि
अष्टमी	शिव
नवमी	दुर्गा
दशमी	यम
एकादशी	विश्वदेव
द्वादशी	विष्णु
त्रयोदशी	कामदेव
चतुर्दशी	शिव
पूर्णिमा	चन्द्रमा
अमावस्या	पितर

किसी भी कार्य की शुभता एवं अशुभता, मुहूर्त्त निर्धारण, व्रत पर्वों के निर्धारण सहित देवताओं की विशेष आराधना में तिथि स्वामी के ज्ञान की आवश्यकता होती है।

तिथियों की नन्दादि संज्ञाएँ

जैसा कि हम जानते हैं कि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ कर कृष्णपक्ष की अमावस्या तक 30 तिथियाँ होती हैं परन्तु प्रतिपदादि 15 तिथियों का ही शुक्ल एवं कृष्ण दानों पक्षो में प्रवर्तन होता है। इन 15 तिथियों की निम्नलिखित संज्ञाएँ निर्धारित हैं जिनका प्रयोग मुहूर्त्तादि निर्धारण में किया जाता है। तिथियों की संज्ञाओं के विषय में आचार्य रामदैवज्ञ ने मुहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थ के शुभाशुभप्रकरण में लिखा है कि–

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्योऽशुभमध्यशस्ताः।
सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः।।

अर्थात् प्रतिपदादि तिथियों की क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता एवं पूर्णा संज्ञा होती है अर्थात् प्रतिपदा की नन्दा, द्वितीया की भद्रा, तृतीया की जया, चतुर्थी की रिक्ता पंचमी की पूर्णा पुनः षष्ठी की नन्दा, सप्तमी की भद्रा, अष्टमी की जया, नवमी की रिक्ता, दशमी की पूर्णा, एकादशी की नन्दा, द्वादशी की भद्रा, त्रयोदशी की जया, चतुर्दशी की रिक्ता, पूर्णिमा/अमावस्या की पूर्णा संज्ञा होती है।

निम्नलिखित चक्र द्वारा हम तिथि संज्ञाओं का सरलतया ज्ञात कर सकते हैं–

तिथियाँ	प्रतिपदा षष्ठी एकादशी	द्वितीया सप्तमी द्वादशी	तृतीया अष्टमी त्रयोदशी	चतुर्थी नवमी चतुर्दशी	पंचमी दशमी पूर्णिमा
संज्ञा	नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा

इसी क्रम में आचार्य नें तिथियों के शुभाशुभत्व का भी वर्णन किया है जिसमें शुक्ल पक्ष के आदि की 5 तिथियाँ अशुभ पुनः 6 से 10 तक मध्यम एवं 11 से 15 तक शुभ होती हैं, इसी प्रकार कृष्णपक्ष के आदि की 5 तिथियाँ शुभ, मध्य की 5 तिथियाँ मध्यम एवं अन्त की 5 तिथियाँ अशुभ फलप्रद होती हैं।

1.3 तिथि साधन

तिथि परिचय क्रम में आप सब ने पढा है कि सूर्य–चन्द्रमा के गत्यन्तर से ही तिथियों की उत्पत्ति होती है। अतः तिथि साधन हेतु सूर्य एवं चन्द्रमा के स्पष्ट मान एवं उनके गतियों का ज्ञान होना परमावश्यक है क्यों कि इसके बिना तिथियों का साधन संभव ही नहीं हो सकता। अतः गति सहित स्पष्ट सूर्य एवं स्पष्ट चन्द्रमा का ज्ञानकर सिध्दान्त एवं करण ग्रन्थों में तिथि साधन की विधियां वर्णित है जिनकी सहायता से सरलता पूर्वक तिथियों का साधन किया जा सकता है। जैसा कि ग्रहलाघवकार ने लिखा है–

भक्ता व्यर्कविधोर्लवा यमकुभिर्याता तिथिः स्यात्फलं,
शेषं यातमिदं हरात्प्रपतितं भोग्यं विलिप्तास्तयोः।
भुक्त्योरन्तरभाजिताश्च घटिकायातैष्यकाः स्युः क्रमात्।।

अर्थात् स्पष्ट चन्द्रमा में स्पष्ट सूर्य घटाकर प्राप्त शेषफल को अंशात्मक बनाकर अंशादि फल में 12 से भाग देंगें इस प्रकार प्राप्त भागफल गत तिथि की संख्या होगी। (प्रस्तुत प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि 1 आदि भागफल से 15 तक शुक्लपक्ष की

प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त तिथियों का तथा 16 से 29 आदि भागफल द्वारा क्रमशः कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से चतुर्दशी पर्यन्त गततिथि का ज्ञान होगा। जैसे यदि भागफल 4 प्राप्त हुआ तो गततिथि शुक्लपक्ष की चतुर्थी परन्तु यदि भागफल 19 प्राप्त हुआ तो कृष्णपक्ष की चतुर्थी गत तिथि होगी) शेष अंशादि वर्तमान तिथि का भुक्तांश तथा भुक्तांश को 12 अंश में घटाने पर वर्तमान तिथि का भोग्यांश प्राप्त होगा। अब इस भुक्तांश या भोग्यांश से वर्तमान तिथि का भुक्त एवं भोग्य घट्यादि प्राप्त करने के लिए भुक्त अंशादि में 60 से गुणाकर सूर्य चन्द्रमा के गतियों के अन्तर से भाग देने पर वर्तमान तिथि का भुक्त घट्यादि एवं भोग्यांश में 60 से गुणाकर सूर्य एवं चन्द्रमा के गत्यन्तर से भाग देंने पर भोग्य घट्यादि का मान प्राप्त हो जाएगा। इसका सूत्रात्मक स्वरूप निम्नलिखित होगा।

स्पष्ट चन्द्रमा – स्पष्ट सूर्य = राश्यादि सूर्यचन्द्रान्तर

सूर्य चन्द्रमा के राश्यादि अन्तर की राशि में 30 से गुणाकर उसके अंशादि में जोडने से सूर्य एवं चन्द्रमा का अंशादि अन्तर हो जाएगा।

अंशादि सूर्यचन्द्रान्तर ÷ 12 = लब्धि = गततिथि की संख्या

शेष = वर्तमान तिथि का भुक्तांश

12अंश – भुक्तांश = वर्तमान तिथि का भोग्यांश।

चन्द्रगति – सूर्यगति = गत्यन्तर

$\frac{60 \times \text{भुक्तांश}}{\text{गत्यन्तर}}$ = वर्तमान तिथि का भुक्त घट्यादिमान।

$\frac{60 \times \text{भोग्यांश}}{\text{गत्यन्तर}}$ = वर्तमान तिथि का भोग्य घट्यादिमान।

उदाहरण– अब हम तिथि साधन को उदाहरण के द्वारा समझेंगें–

विक्रम संवत् 2078, चौत्र शुक्ल प्रतिपदा, दिनाङ्क 13।04।2021 के दिन तिथि साधन का उदाहरण प्रस्तुत है–

क्यों कि–

एक चान्द्रमास पूर्ति काल में सूर्य द्वारा भुक्त राशि = 1

एवं एक चान्द्रमास पूर्ति काल में चन्द्रमा द्वारा भुक्त राशि = 13

अतः एक चन्द्रमास में इन दोनो के मानों का अन्तर = 13 – 1 = 12 राशि

एक राशि = 30 अंश

बारह राशि = 30 × 12 = 360 अंश, यही एक चान्द्रमास में सूर्य और चन्द्रमा का अंशात्मक अन्तर है।

जैसा कि आप जानते है कि एक चान्द्रमास में 30 तिथियां होती है। अतः
नियमानुसार– 1 चान्द्रमास = 30 तिथि =360 अंश।

अतः इससे यह सिध्द होता है कि सूर्य और चन्द्रमा के मध्य 12–12 अंशों के अन्तर से 30 तिथियां पूर्ण होती है। अर्थात् सूर्य चन्द्रमा के 12 अंश अन्तर से प्रतिपदा, 24 अंश अन्तर से द्वितीया, 36 अंश अन्तर से तृतीया, 48 अंश अन्तर से चतुर्थी, 60 अंश अन्तर से पंचमी, 72 अंश अन्तर से षष्ठी तथा इसी प्रकार 12–12 अंश के वृध्दि क्रम से 180 अंश अन्तर से पूर्णिमा तिथि की पूर्णता होती है। इसके बाद कृष्ण पक्ष का आरम्भ होता है तथा 12 अंश के बढते क्रम से 192 अंश अन्तर से कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा, 204 अंश अन्तर से द्वितीया, 216 अंश अन्तर से तृतीया तथा इसी प्रकार वृध्दि क्रम से

360 अंश या 0 अंश अन्तर होने पर अमावस्यान्त हो जाता है। इस प्रक्रिया में सूर्य चन्द्रान्तर से 1 तिथि उत्पन्न होती है अतः सूर्य चन्द्रमा के स्पष्ट अंशादि अन्तर में 12 का भाग देनें से गत तिथि की संख्या प्राप्त होती है। यह विशेष बता देने योग्य बात है कि कृष्ण पक्ष की प्रतिपदादि तिथियों के लिए क्रमशः 16,17,18..... आदि संख्याएँ प्राप्त होंगी अर्थात् कृष्ण प्रतिपदा के लिए 16, द्वितीया के लिए 17, तृतीया के लिए 18 आदि। तिथि साधन की इस गणितीय विधि में सूर्यचन्द्रान्तर में 12 का भाग देने पर जो लब्धि वह गत तिथि तथा जो शेष बच जाएगा वह वर्तमान तिथि का भुक्त अंशादि मान होगा। चूंकि एक तिथि का पूर्ण अंशादि मान 12 अंश होता है इसलिए 12 अंश में भुक्त अंशादि मान को घटाने से वर्तमान तिथि का भोग्य अंशादि मान प्राप्त हो जाता है। परन्तु तिथियों का भुक्त भोग्य मान तो पंचांग एवं प्रयोग में घटी पल आदि में व्यवहृत होता है इसलिए इनको घट्यादि बनाने के सिध्दान्त निम्नलिखित हैं।

मध्यम मान से किसी ग्रह द्वारा 60 घटी में भुक्त अंशादिक उस ग्रह की गति होती है। इसी लिए **"दिनद्वयग्रहान्तरं गतिः"** इत्यादि उक्तियां ग्रह गति हेतु प्रचलित हैं इसके अनुसार दो दिन के ग्रह स्पष्ट का अन्तर कर ग्रह गति प्राप्त की जाती है तथा इसी प्रकार सूर्यादि सभी ग्रहों की गतियां साधित की जाती है। परन्तु चन्द्रमा की गति शीघ्रतम होने के कारण इसके गति ज्ञान की विधि भिन्न है। चन्द्रमा की तत्कालिक स्पष्टगति साधित करने के लिए 2880000 में पलात्मक भभोग से भाग देने पर चन्द्रमा की स्पष्ट गति प्राप्त होती है। चन्द्रमा की मध्यमा गति कलादि 790:35 तथा सूर्य की कलादि मध्यमा गति 59:8 होती है। अब तिथि की भुक्त तथा भोग्य घटी जानने के लिए सूर्य चन्द्रमा के गतियों का अन्तर करके अनुपात करेंगें कि– यदि सूर्य चन्द्रमा के गति अन्तर कला में 60 घटी मिलती है तो तिथि के भुक्त या भोग्य कला में क्या? इसके अनुसार भुक्त एवं भोग्य घटी प्राप्त हो जाएगी।

सूत्र–

$$\frac{60\ (\text{घटी}) \times \text{भुक्तकला}}{\text{सू. चं. गत्यन्तर}} = \text{भुक्त घटी पल आदि}$$

$$\frac{60\ (\text{घटी}) \times \text{भोग्यकला}}{\text{सू. चं. गत्यन्तर}} = \text{भोग्य घटी पल आदि}$$

उपर्युक्त खगोलीय सैद्धान्तिक नियमों के अनुसार तिथि एवं उसके भुक्त भोग्यमान गणित द्वारा साधित होते हैं।

1.4 तिथि वृद्धि एवं तिथिक्षय

भारतीय ज्योतिष के संहिता एवं होरा स्कन्ध के अन्तर्गत समष्टि एवं व्यक्तिगत फल निर्धारण के क्रम में तिथियों के वृध्दि एवं क्षय का स्वरूप फल सहित दिखाई देता है। परन्तु सैध्दान्तिक एवं गणितीय दृष्टि से किसी भी तिथि की ह्रास वृध्दि नहीं होती अपितु प्रतिपदादि सभी तिथियां सूर्य चन्द्रमा के 12–12 अंशों के अन्तर से क्रमशः नियमित रूप में उपस्थित होती हैं। तथापि पंचांगों सहित प्रायोगिक जीवन में उपर्युक्त विषय की उपलब्धता वास्तविक स्थिति के ज्ञान हेतु हमें प्रेरित करती रहती है। अतः आइए हम सब तिथियों के वृध्दि एवं क्षय के स्वरूप का अध्ययन करते हैं।

जैसा कि ऊपर आपने पढ़ा है कि सैध्दान्तिक दृष्टि से किसी भी तिथि का क्षय या वृध्दि नहीं होती अपितु भारतीय काल गणना परम्परा में अनेक कालमानों के समवेत व्यवहार के कारण अधिमास, क्षयमास तथा तिथि ह्रास–वृध्दि की आभासिक स्थिति उत्पन्न होती है। प्रस्तुत प्रसङ्ग में यह भी स्मरणीय है कि दिनों का प्रयोग हम सावन मान में करते हैं जो कि एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के मध्यवर्ती तथा 60 घटी से

कुछ अधिक (गति कलोत्पन्नासु तुल्य अधिक) होता है, तिथियां सूर्य चन्द्रमा के अन्तर से उत्पन्न होती है जिनका मध्यम मान 59 घटी के आसन्न होता है। अतः घट्यादि मान में अल्प, तिथियों का यदि मान में अधिक सावन दिन के अन्तर्गत समावेश हो जाता है तथा उसका किसी भी सूर्योदय के साथ सम्पर्क नहीं होता है तो उसकी वृध्दि संज्ञा हो जाती है क्यों कि इस गणना परम्परा में सूर्योदय से सम्बन्धित तिथि का ही क्रम गणना में समावेश किया जाता है इसीलिए सूर्योदय की असम्बध्दता से तिथि की क्षय तथा द्विसम्बध्दता से तिथि वृध्दि की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। तिथि क्षय की स्थिति उत्पन्न होने पर एक सावन दिन में तीन तिथियों की सन्धियां पड़ती हैं जिसमें प्रथम तिथि सूर्योदय के कुछ बाद तक रहती है जिससे सूर्योदय के बाद द्वितीय तिथि का आरम्भ होता है और यह द्वितीय तिथि अग्रिम सूर्योदय के पूर्व ही समाप्त हो जाती है जिससे सूर्योदय के पूर्व ही तृतीय तिथि का आरम्भ हो जाता है अतः द्वितीय तिथि का पूर्व एवं पर के किसी भी सूर्योदय से सम्पर्क नहीं होने के कारण क्षय संज्ञा हो जाती है। तिथि क्षय का अधिकतम प्रमाण 10 घटी का होता है अतः क्षय तिथि का मान भी 50 घटी से कम नहीं मिलता परन्तु परिभाषा के अनुसार सूर्योदय से असम्बध्दता इसकी क्षय संज्ञा कर देती है। यह स्थिति सामान्यतया 64 दिनों में उत्पन्न होती है।

तिथि वृध्दि की स्थिति उत्पन्न होने पर एक तिथि का तीन सावन दिवसों से सम्बन्ध बनता है जिसमें सूर्योदय के कुछ समय पूर्व तिथि का आरम्भ होकर द्वितीय दिन पूर्ण 60 घटी का मान बना रहता है तथा तीसरे दिन सूर्योदय के कुछ काल बाद तक उस तिथि की स्थिति बनी रहती है अतः दो सूर्योदयों से सम्पर्क होने से इसकी वृध्दि संज्ञा हो जाती है। सामान्यतया तिथि का मध्यममान सावन दिन से कम होने के कारण एक तिथि में दो सूर्योदय का होना अस्वाभाविक लगता है परन्तु जब चन्द्रमा की अल्पगति के कारण तिथि का मान सावन दिन से अधिक हो जाता है तो यह स्थिति उत्पन्न होती है। तिथि वृध्दि का अधिकतम मान 7 घटी तक होता है जिससे तिथि 67 घटी तक हो सकती है। सामान्य तिथि का केवल एक सूर्योदय से ही सम्पर्क होता है तथा तिथि क्रम में उसकी स्वाभाविक गणना होती है। आप किसी भी पंचांग में उपर्युक्त स्थितियों को स्पष्ट रूप में देख सकते हैं।

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आपने तिथि की उत्पत्ति सहित साधन विधि को विस्तार पूर्वक समझा है अतः इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जान लिया है कि तिथियों की उत्पत्ति दीर्घ कालिक सतत् आकाशीय परीक्षण का परिणाम है जिसे भारतीय ऋषियों ने सम्पादित किया है। तिथि निर्धारण से ही सूर्य और चन्द्रमा के सभी प्रकार के परस्पर सम्बन्ध सुव्यवस्थित हो सके। सूर्योदय के बाद सूर्यास्त एवं पुनः सूर्योदय एवं सूर्यास्त तथा इसके बीच एक पूर्ण प्रकाश युक्त तो एक अन्धकार पूर्णरात्रि इसमें कहीं ऐसा मानक नहीं था जिसे स्थिर बिन्दु मान कर सम्बन्धों का सत्यापन किया जा सके। अतः ऋषियों द्वारा निरभ्र आकाश के सतत् परीक्षण ने सूर्य एवं चन्द्रमा के सम्बन्धों को परिभाषित करते हुए तिथियों के उत्पत्ति का मार्ग प्रशस्त किया जो सूर्य एवं चन्द्रमा के एक युति से दूसरी युति के बीच तीस संख्या में होती हैं। तथा इनका 12–12 अंशों के अन्तर से क्रम आता है। प्रकाश पूर्ण रात्रि अर्थात् पूर्णिमा की सांध्यवेला में पूर्वी क्षितिज पर पूर्ण चन्द्रमा का दिखलायी देना और धीरे धीरे प्रतिदिन उसका क्षीण होकर पूर्ण अन्धकार में विलीन हो जाना निरन्तर ध्यान में आता रहा और ऐसा प्रतीत होने लगा कि चन्द्रमा पूर्णता से 15 दिनों में अन्धकार पूर्ण रोकर पुनः 15 दिनों में पूर्णता को प्राप्त कर रहा है। इसीलिए उस तिथि या रात्रि को पूर्णा या पूर्णिमा कहा गया। ये पूर्णिमा भी राका और अनुमिति तथा अमावस्या कुहू और

सिलीवाली भेद से दो–दो प्रकार की होती हैं। यद्यपि इनमें से प्रतिपदादि किसी भी तिथि का वृध्दि एवं क्षय नहीं होता परन्तु फलित के क्रम में सूर्योदय से असम्बध्द तिथि की क्षय तथा दो सूर्योदय से द्विसम्बध्द तिथि की वृध्दि संज्ञा की गई है। इसके साथ ही इन तिथियों के अधिपति का वर्णन भी किया गया है। तिथियों का आरम्भ शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से होती है तथा शुक्लपक्ष की अन्तिम तिथि पूर्णिमा होती है और उसके लिए 15 का प्रयोग होता है कृष्ण पक्ष की अंतिम तिथि अमावस्या होती है तथा इसकी संख्या 30 होती है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

तिथि – सूर्य एवं चन्द्रमा के 12 अंशात्मक अन्तर को तिथि कहते हैं।

पूर्णिमा – शुक्ल पक्ष की पन्द्रहवीं (अन्तिम) तिथि का नाम पूर्णिमा है।

अमावस्या – कृष्णपक्ष की पन्द्रैहवीं (अन्तिम) तिथि का नाम अमावस्या है।

दिनेश – दिन के ईश अर्थात् स्वा्मी को दिनेश कहा जाता है। जिसे हम सूर्य के रूप में जानते है।

नन्दा – प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी तिथि की नन्दा संज्ञा होती है।

भद्रा – द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी की भद्रा (विष्टि) संज्ञा होती है।

जया – तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथि की जया संज्ञा होती है।

रिक्ता – चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी तिथि को रिक्ता कहते है।

पूर्णा – पंचमी, दशमी, पूर्णिमा एवं अमावस्या तिथि को पूर्णा के नाम से भी जाना जाता है।

क्षय तिथि – जिस तिथि में कोई सूर्योदय न हो उसे क्षय तिथि कहते हैं।

वृध्दि तिथि – जिस तिथि को दो सूर्योदयों से सम्बद्ध हो उसकी वृद्धि संज्ञा होती है।

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. भारतीय ज्योतिष का इतिहास
2. ग्रहलाघवम्
3. तैतरीय ब्राह्मण
4. पंचांग साधन
5. ज्योतिष शास्त्र
6. भारतीय ज्योतिष–डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. केशवीय जातक पद्धति
2. ज्योतिष सर्वस्व
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान
4. भारतीय ज्योतिष

5. ग्रहलाघवम्
6. सूर्यसिद्धान्त

1.9 बोध प्रश्न

1. तिथियों का विस्तृत परिचय दीजिये।
2. स्वकल्पित उदाहरण द्वारा तिथि साधन कीजिये।
3. तिथियों की ऐतिहासिक परम्परा का निरूपण कीजिये।
4. ज्योतिषशास्त्र में तिथियों के योगदान को स्पष्ट कीजिये।
5. भुक्त भोग्य सहित तिथि साधक सूत्र लिखिये।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY